स्त्री-मुक्ति : सपना बनाम संकट

सूर्या ई. वी. *महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय (इलाहाबाद केंद्र)*

जीवन एक सपना है, जिसे मानव देखता है और उसकी सफलता हेतु प्रयत्न करता है। स्त्री का भी अपना एक सपना है, जिसे वह सदियों से देखती आ रही है, वह है - मुक्ति का सपना। यदि स्त्री के अंदर मुक्ति का सपना देखने की चेतना नहीं होगी, तब बंधी जंजीरों से बाहर निकलना उसके लिए असंभव होगा। जब से स्त्री अपनी मुक्ति का सपना देखने लगी है, उसी समय से वह उसकी सफलता के लिए प्रयत्नशील भी है।

'मुक्ति' से यह तात्पर्य है कि 'किसी बंधन से छुटकारा पाना'। यहाँ पर स्त्री-मुक्ति का यही मतलब है स्त्री का पितृसत्तात्मक व्यवस्था के बंधन से मुक्त होना। विस्तार से देखा जाए तो यह सपना एक प्रश्न से जुड़ता दिखाई देता है। यह प्रश्न है- "स्त्री अस्मिता है क्या? दरअसल यह पुरुष के समान स्त्री का समान अधिकार, स्त्री के प्रति विवेकमूलक दृष्टिकोण तथा स्त्री द्वारा पुरुष के वर्चस्व का प्रतिरोध है। औरत का केवल स्वतंत्र होकर निर्णय ले पाना या आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो जाना ही उसकी अस्मिता नहीं है। सही मायने में स्त्री अस्मिता का अर्थ होगा स्त्री के प्रति समाज के दृष्टिकोण और मानसिकता में बदलाव, जिसमें स्त्री के खुद का दृष्टिकोण भी शामिल है। पुरुष के बराबर अधिकार, स्त्री के चयन, वरण और नकारने की स्वतंत्रता, स्त्री की अस्मिता की मुख्य शर्तें हैं।"[1] एक तरह से स्त्री-मुक्ति के तमाम प्रश्न ही स्त्री विमर्श के अंश हैं। इसलिए स्त्री विमर्श उसे कहा जाता है, जिसमें स्त्री-मुक्ति का सपना पूरा करने हेतु संघर्ष होता है जो कि स्त्री की समानता, स्वतंत्रता और न्याय की स्थापना की माँग करता है। इस संदर्भ में सीमोन द बोउवार लिखती हैं कि "स्त्री स्वाधीनता का अर्थ हुआ कि स्त्री पुरुष से जिन पारंपरिक संबंध को निभा रही है, उससे मुक्त हो। हम स्त्री- पुरुष के बीच घटने वाले संबंध को नकार नहीं रहें। उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व होगा और वह पुरुष की होकर भी जीएगी, दोनों अपनी स्वायता में एक दूसरे का आनंद रूप भी देखेंगे। जब दासत्व समाप्त होगा और वह भी आधी मानवता का, तब व्यवस्था का यह ढोंग समाप्त हो जाएगा।"[2] कुल मिलाकर कहा जाए, तो स्त्री विमर्श पुरुष पर अपना वर्चस्व और प्रभुत्व स्थापित करना या पाश्चात्य दृष्टिकोण की तरह, पुरुष से मुक्ति नहीं है, बल्कि वह अपने अधिकार, अस्मिता, गरिमा को स्थापित करने के साथ-साथ स्त्री के प्रति अमानवीय व्यवहार, अत्याचार, उत्पीड़न को समाप्त करना है, जिससे स्त्री-पुरुष दोनों के बीच परस्पर सौहार्दपूर्ण मानवीय संबंध कायम हो।

समाज में स्त्री की पहचान अलग-अलग रूप में होती है जैसे कि एक तरफ बेटी, बहू, माँ आदि के रूप में, दूसरी तरफ जाति, धर्म, वर्ग के नाम पर तथा घरेलू स्त्री, आत्मनिर्भर स्त्री, शिक्षित व अशिक्षित स्त्री आदि के रूप में। जिस तरह स्त्री की अपनी भिन्न परिस्थितियों के अनुसार अपनी अलग-अलग समस्याएँ होती हैं, उसी प्रकार उसकी मुक्ति के सपने भी अलग-अलग होते हैं। फिर भी कहा जाए तो स्त्री चाहे किसी भी देश की हो, लेकिन जिस प्रकार स्त्री की समस्याएँ अलग-अलग होते हुए भी एक समान-सी लगती है, उसी प्रकार उसका सपना भी एक समान लगता है।

सदियों से समाज की आधी आबादी कहलाने वाली स्त्री अपनी बराबरी की हर स्थिति में वंचित रही है।

1. रमणिका गुप्ता, स्त्री विमर्श-कलम और कुदाल के बहाने.पृ. 55

2. सीमोन द बोउवार, (अनु. प्रभा खेतान), स्त्री उपेक्षिता.पृ. 346

अर्थात् स्त्री-पुरुष के बीच की लैंगिक असमानता इतने व्यापक स्तर पर है कि सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं जहाँ स्त्री का बराबरी का दर्जा हो। लेकिन आधुनिक नारी इन लक्ष्यों की सफलता हेतु इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था से खुद बाहर निकलकर अपना अस्तित्व बना रही है। गौर करने की बात यह भी है कि समाज के आधे से ज्यादा प्रतिशत स्त्री-समूह आज भी पितृसत्ता के नियमों के अनुसार या उसे बेहद सही मानते हुए ही अपना जीवनयापन कर रहे हैं। अत: स्त्री-मुक्ति का महत्वपूर्ण तथा अहम पहलू तो यही है कि औरतें इस बंधन को समझें और इस गुलामी से बाहर निकलें तथा अपनी जिंदगी किसी दूसरे के कहने पर या दबाव पर नहीं, बल्कि अपने तरीके से जिएँ, साथ ही साथ वे हर क्षेत्र में अपनी एक पहचान बनाएँ। लेकिन एक स्त्री के समक्ष चुनौतियों की श्रृंखला तब से शुरू होने लगती है, जब वह इससे मुक्ति पाने की कोशिश करती है। इसमें प्रमुख स्त्री के विरुद्ध बनाए गए सामाजिक नियम ही हैं। इसे पुरुष द्वारा स्त्री को अपने अधीन बनाने के लिए बनाया गया है। इन नियमों का पालन वैदिक काल से अब तक स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर बहुत अच्छे ढंग से करते आए हैं। इसलिए स्त्री विमर्श यही चाहता है कि स्त्री खुद अपनी समस्याओं को केवल अपनी नियति समझने के बजाय अपनी मुक्ति की जरूरत या इसकी जड़ को समझे और उसका विरोध करे। तब कोई भी स्त्री दूसरी स्त्री के खिलाफ भी नहीं खडी होगी, क्योंकि एक जागरुक स्त्री ही हमेशा दूसरी स्त्री का साथ दे सकती है। इसलिए आज बहुत अधिक मात्रा में भले ही स्त्री शिक्षा व नौकरी हासिल कर रही है, लेकिन स्त्री-मुक्ति की खातिर स्त्री का शिक्षित और आत्मनिर्भर होने के साथ-साथ उसका जागरुक होना भी बहुत जरूरी है।

नारीवाद और स्त्री विमर्श दोनों स्त्री-मुक्ति की बात ही करते हैं, लेकिन इस पूरे विमर्श में कई मतभेद देखने को मिलते हैं। अत: इन मतभेदों में एकमत होना बहुत जरूरी है, क्योंकि जिन संघर्षों का एक ही लक्ष्य है, उनका सिद्धांत भी एक ही होना चाहिए। इसलिए इन भिन्न विचारों को एक साथ मिलकर अपनी मुक्ति की आवाज उठानी चाहिए। हम जानते हैं कि भारत में स्त्री-मुक्ति आन्दोलन अब तक छोटे-छोटे स्तर पर ही हुआ है। समाज में कुछ स्त्रियाँ ऐसी हैं, जिन्हें स्त्री-मुक्ति आंदोलन से कोई लेना देना नहीं है, जो परंपरा व संस्कृति को लेकर चलती हैं। कुछ स्त्रियाँ ऐसी हैं जो पूरी ताकत के साथ लड़ नहीं पाती, क्योंकि वे परंपरागत और आधुनिकता के बीच संकट में हैं। अन्य कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी हैं कि जिनका विचार एक दूसरे से मिलता नहीं है। इन वजहों से समाज में स्त्री का संगठित होकर लड़ना संभव नहीं हो पाता। इसलिए स्त्री-मुक्ति के मुद्दे से जुड़ी हुई महिलाओं को, जो स्त्रियाँ इस आंदोलन से कोसों दूर हैं, उन्हें इसमें शामिल करना बहुत जरूरी है और महिलाओं को खुद ही अपने-अपने विचारों में एकमत होना होगा। इस प्रकार सफलता हेतु जब स्त्रियाँ एक होंगी और उनके विचार एक होंगे तब स्त्री-मुक्ति का स्वप्न पूरा होगा। अत: यह जरूर कह सकते हैं कि जब समाज की सभी स्त्रियाँ अपनी इस नियति की जड़ को समझते हुए, अपने प्रति हो रहे अन्यायों के खिलाफ आवाज उठाने लगेंगी तब पितृसत्ता का समूचा परिदृश्य ही पलट जाएगा, इसमें कोई संदेह नहीं है। यही स्त्री-मुक्ति का सपना है।

परंपरागत रीति-रिवाज और आचार से मुक्ति स्त्री विमर्श के प्रमुख पहलू हैं। संकट यह है कि भारतीय समाज में जितने भी धार्मिक रीति-रिवाज और प्रथाएँ मौजूद हैं, जो केवल महिलाओं के लिए बनाए गए हैं। इसलिए उसका पालन भी महिलाओं द्वारा ही किया जाता है। यही स्थिति स्त्री-पुरुष असमानता को स्पष्ट रूप से पेश करती है। सवाल यह है कि हमारी संस्कृति में पुरुष को क्यों छूट दी गई है? रीति-रिवाज

भी कुछ ऐसे ही है जो कि पुरुष की सेवा या उसकी भलाई, उसकी लंबी उम्र आदि के लिए होता है। जैसा कि हिंदू धर्म में करवाचौथ, तीज (पति की लंबी उम्र के लिए), भाई दूज और रक्षा बंधन (अपने भाई की दीर्घायु के लिए)। लेकिन ऐसा कोई व्रत, उपवास मौजूद है जो पुरुष स्त्री के लिए रखता हो? पुरुष स्त्री की लंबी उम्र की चिंता क्यों नहीं कर सकता? यह कह सकते हैं कि व्रत-उपवास रखने से पति-पत्नी, बहन-भाई के बीच के प्यार तो बढ़ता है, लेकिन यह सब केवल स्त्री के लिए ही क्यों कहा गया है? यदि ये प्रथाएँ सामान रूप से स्त्री-पुरुष दोनों के लिए होते हैं, तो शायद इसके विरोध में कोई नहीं आता। लेकिन स्त्री की समस्याएँ यही पर खत्म ही नहीं होतीं। कुछ नियम ऐसे भी बनाए गए हैं कि शादी के बाद स्त्री को क्या-क्या नहीं करना पड़ता है। जैसे कि बाहर ही नहीं घर के अंदर भी साढ़ी में रहने की रिवाज, घूंघट डालना, हाथ में चूड़ियाँ, पैर में बिछिया, माथे पर सिंदूर, गले में मंगलसूत्र आदि का पालन करना होता है, जबकि पुरुष के लिए ऐसा कोई विधान भी नहीं है। इन बंधनों से स्त्री गुलाम होती रहती है तथा पुरुष द्वारा अपना वर्चस्व कायम किया जाता है।

भारत में ऐसी कई रूढ़ियाँ व प्रथाएँ प्रचलित हैं जो कि स्त्री शोषण को बढ़ावा देती हैं। अत: इनसे मुक्ति, स्त्री के लिए जरूरी है। पुरुष ने सारे नियम अपने हित में बनाए हैं जैसे कि पति की चिता में पत्नियों को धकेल देना, कामोत्तेजना की शांति के लिए बहु विवाह प्रथा, पत्नी की मृत्यु के बाद पति का पुनर्विवाह, दहेज प्रथा आदि। एक समय ऐसा भी था, जिसमें विधवा विवाह व पुनर्विवाह से स्त्री वंचित रही। आज भी पुनर्विवाह, विधवा विवाह के लिए स्त्री को वर नहीं मिलने की स्थिति देखने को मिलती है, परंतु पुरुष चाहे कितने भी बूढ़े क्यों न हो उसे लड़की मिलने में देर नहीं लगती है। अंधविश्वास के चलते कुछ ऐसी भी प्रथा है जो कि दलित व आदिवासियों के बीच प्रचलित है - जैसे डायन प्रथा। यहाँ पर मुक्ति का सवाल इन रूढ़ियों व अंधविश्वासों और उससे उत्पन्न सामाजिक अन्यायों के प्रति है। इसके अलावा अन्य कई सामाजिक अन्यायों का स्त्री को सामना करना पड़ता है, जैसे कन्या शिशु हत्या। हमारी जनगणना के आँकड़ों से यह पता चलता है कि स्त्री और पुरुष के अनुपात में बहुत अंतर हैं। यही नहीं, इनके जन्म लेने की संख्या में उतना फर्क नहीं है, जो कि बाद की गणना में दिखाई देता है। अर्थात् कन्या जन्म तो लेती है, पर उसके बाद उसकी मृत्यु दर ज्यादा होती है। हम जानते हैं कि सामंती काल में कन्याओं को आक का दूध जहर के रूप में पिलाकर और खाट के पाए के नीचे दबाते हुए ही शिशु कन्याओं को मार दिया जाता है। आज यह स्थिति विज्ञान के विकसित दौर में भ्रूणहत्या के रूप में है। भविष्य में इस हत्या का रूप बदलकर कुछ और भी हो सकता है। यहाँ सवाल यह उठता है कि समाज का स्त्री के प्रति इतना विरोधाभास क्यों है, जबकि पुरुष की तरह वह भी एक मानव है? क्या एक स्त्री होने की वजह से ही उसके साथ निरंतर यह भर्त्सना की जाती है?

इस सामाजिक मानसिकता से मुक्त होना बहुत जरूरी है। इसके लिए शिक्षित और आत्मनिर्भर होना काफी नहीं है, बल्कि पूरे समाज को सामंती सोच से मुक्त करना है। इसलिए जागरूक होना अपने आप में बहुत बड़ा सवाल है। अक्सर देखा गया है कि पढ़े-लिखे लोग ही प्राय: इस सोच के पक्षधर होते हैं। यानि की वे शिक्षित प्रबुद्ध वर्ग आज भी इस बात को स्वीकार करने को तैयार नहीं है कि प्रकृति की ओर से पुरुष और स्त्री दोनों में समान शक्ति और बुद्धि होती हैं। स्त्री-पुरुष असमानता अभी तक बने रहने का एक मुख्य कारण यह भी है।

स्त्री से मात्र जुड़ा हुआ दो शब्द हैं कि 'पतिव्रता' और 'यौन शुचिता'। गौर करने की बात यह है कि पतिव्रता और यौन शुचिता का पालन करने वाली भारतीय संस्कारी स्त्री पर लगाए गए इस जंजीरों को ओर मज़बूत बनाने हेतु सबसे अधिक शोषण उसकी देह पर ही केंद्रित है। जो कभी पुरुष अपनी वासनापूर्ति व कभी बदला लेने के लिए करता है। जब एक स्त्री के साथ अनहोनी होती है तब वह अपने आप को ही अपराधी समझने लगती है और विरोध करने का साहस भी नहीं जुटा पाती है। यहाँ पर स्वयं स्त्री द्वारा पितृसत्तात्मक व्यवस्था की जीत का रास्ता ओर साफ करती हुई प्रतीत होती है। यौन शुचिता व पवित्रता का शब्द स्त्री के साथ जुड़े रहने के कारण ही स्त्री अपने आप को असुरक्षित महसूस करती है। वास्तव में यौन शुचिता की इस मानसिकता के पीछे ब्राह्मणवादी पितृसत्ता की बहुत बड़ी राजनीति छिपी है। ब्राह्मणवादी पितृसत्ता ने जाति व्यवस्था को सदा बनाए रखने तथा समाज में अपने वर्चस्व को कायम रखने के लिए स्त्री और अन्य जातियों को अपने आधीन रखा। अर्थात् ब्राह्मणवाद ने प्रत्येक जाति के लिए अलग अलग नियम बनाए हैं, जिसका उल्लंघन करने का अधिकार किसी को भी नहीं था, क्योंकि वह चाहता था कि हमेशा समाज के समक्ष उसका ही वर्चस्व रहे। इसके लिए उसने सबसे पहले स्त्री की स्वतंत्रता का उल्लंघन करना जरूरी समझा। स्त्री की भूमिका उसकी प्रजनन क्षमता से होती थी, जिसका सीधा संबंध पितृ संपत्ति के अधिकार से जुड़ा हुआ है। अत: अपनी जाति की, स्त्री के अन्य किसी पुरुष से किसी भी तरह से यौन संबंधों में रोक लगाना ब्राह्मणवादियों के लिए जरूरी थी। जातियों के बीच मिश्रण होना, सुसंगठित समाज व्यवस्था का पतन माना जाता था। पुरुष द्वारा स्त्री की कड़ी निगरानी भी होती थी जिस कार्य को आसान बनाने हेतु स्त्री के लिए पतिव्रता धर्म पालन करने का निर्देश दिया गया है। इससे स्त्री खुद अपनी यौन शुचिता के भंग न होने पर विशेष ध्यान देने लगी। इस प्रकार स्त्री के लिए अपनी देह की सुरक्षा करना एक अनिवार्य विषय बनता गया, लेकिन यह मान्यता पुरुष के लिए नहीं थी।

यूँही स्त्री के प्रति बढ़ते जा रहे अन्याय के चलते वर्तमान युग में 'देह मुक्ति' को स्त्री विमर्श का एक अहम पहलू के रूप में देखा जा रहा है। धार्मिक ग्रंथों, आख्यानों, दृष्टांतों आदि में स्त्री की देह को उसकी योनि तक संकुचित कर दिया है। यही नहीं, समाज में स्त्री का हर बंधन उसकी देह से जुड़ा हुआ लगता है। अत: वह आज अपनी दैहिक स्वतंत्रता पर विचार करने लगी है। इसलिए सवाल यह है कि क्या स्त्री की देह पर उसका अधिकार होना चाहिए या पुरुष का? क्योंकि अब तक स्त्री यह मानकर चली है कि उसकी देह में सिर्फ उसके पति का अधिकार है न की किसी अन्य पुरुष का। लेकिन आज इस मानसिकता में थोड़ा-सा बदलाव आने लगा है। स्त्री विमर्श में यह सवाल इसलिए उठ रहा है कि जब एक पुरुष इन चीजों से मुक्त है केवल स्त्री के लिए यह पाबंदी क्यों है? यही नहीं, पुरुष को लेकर ऐसी कोई बात नहीं उभरी है कि पुरुष पर सिर्फ उसकी पत्नी का अधिकार है? लेकिन इन सवालों के साथ यह भी ध्यान देना जरूरी है कि देह मुक्ति से यौन मुक्ति की ओर की स्थिति सामाजिक रिश्तों को खोखला बना सकती है। यह तनाव, यौनिक बीमारियाँ, निराशा आदि का कारण बन जाती है। इस संदर्भ में महादेवी वर्मा का कथन स्मरणीय है कि 'स्त्री जाति को अपने स्त्रीयोचित गुणों पर गर्व करना चाहिए और मुक्तता अर्थात् चरित्रहीनता का अनुकरण नहीं करना चाहिए।'

आज 'सौंदर्य' बाजार के मुनाफे का सबसे बड़ा केंद्र बिंदु है। अर्थात् हर कोई अपनी सुंदरता के प्रति सचेत है। बिना मेक-अप, बिना कंघी करे, बिना अच्छे कपड़े पहने, बाहर निकलना उसे शर्मनाक लगता

है। सौंदर्य को बढ़ावा देने में विज्ञापन और मीडिया की बहुत बड़ी भूमिका हैं। अत: बाजार ने सौंदर्य के प्रति मानव की इस सोच को बनाए रखने हेतु अपने मुनाफे की मजबूती कड़ी के रूप में स्त्री को ही समझा। इसलिए विज्ञापनों में स्त्री एक कमोडिटी की तरह पेश की जा रही है, जिसे देखते हुए लोग आकर्षित हों और सौंदर्यवर्धक साधनों का बड़ी मात्र में इस्तेमाल करें। इस फैशन की ओर सबसे ज्यादा स्वयं स्त्री भी आकर्षित है। वह अपने आप को सुंदर बनाने में बहुत रुचि दिखाती है और चमकीले कपड़े, शैम्पू, क्रीम आदि का अधिक मात्रा में उपयोग करती है। इस तरह बाजार ने अपने षड्यंत्र के जाल में स्त्री को जकड़ रखा है। कहने का तात्पर्य यह है कि स्त्री को बाजार के इस तंत्र को समझना होगा कि सौंदर्यवर्धक चीज़ें स्त्री को सुंदर क्यों बनाना चाहती हैं? स्त्री को विज्ञापन द्वारा क्यों पेश किया जा रहा है? क्योंकि स्त्री की सुंदरता से पुरुष ही अधिक आकर्षित होता है। अर्थात् पुरुष को खुश रखने हेतु स्त्री को अधिक सुंदर होने की जरूरत पर बल दिया जा रहा है। इस संदर्भ में यह कहना उचित लगता है कि "स्त्री को यह नहीं भूलना चाहिए कि मीडिया पर वर्चस्व पुरुषों और उनकी घोषित-अघोषित सत्ता का है और इस सत्ता के सूत्र पितृसत्तात्मक व्यवस्था में हैं। अत: इस षड्यंत्र को समझे **बिना स्त्री की सही मुक्ति** संभव नहीं।"[3] अत: स्त्री को अपनी इस उपभोक्तावादी मानसिक गुलामी से मुक्त होना चाहिए।

3. अरविन्द जैनएवं लीलाधर मंडलोई (सं.), स्त्री: मुक्ति का सपना.पृ. 29

आर्थिक रूप से सक्षम होना स्त्री-मुक्ति का महत्वपूर्ण एक बिंदु है। लेकिन स्त्री समूह आर्थिक रूप से पिछड़ा हुआ है, उसकी इस पराधीनता की एक मजबूत कड़ी आर्थिक आत्मनिर्भरता का अभाव है। इसका सबसे बड़ा कारण समान अवसर की कमी है। जब एक स्त्री आर्थिक रूप से कामयाब होगी, तब उसकी स्वतंत्रता के दरवाज़े खुलेंगे। उसे फिर किसी दूसरों पर आश्रित होने की जरूरत नहीं होगी तथा अपनी इच्छा से अपना जीवन जीने की हिम्मत उसके अंदर जरूर आएगी। उसका आत्मविश्वास बढ़ेगा। अत: स्त्री को अपने जीवन में आत्मनिर्भरता को अपना पहला लक्ष्य मानना चाहिए।

21वीं सदी में स्त्री प्रत्येक क्षेत्र में अपनी पहचान बना रही है। शिक्षित आत्मनिर्भर स्त्री के समक्ष सबसे बड़ा सवाल यह है कि वह इतना पढ़ लिखकर भी परंपरा और मर्यादा के बंधन या मानसिक बंधन से मुक्त नहीं हो पा रही है। वह हमेशा वही काम करती रहती है जो पितृसत्ता को बनाए रखने में मदद करते हैं। सुबह उठते ही घर का पूरा काम करती है। खाना परोसती है, फिर ऑफिस समय पर पहुँचने की कोशिश करती है, वापस ऑफिस से लौटने के बाद फिर वही काम करती रहती है। इस तरह 24 घंटे वह व्यस्त रहती है। पति और बच्चों के पसंद-नापसंद पर विशेष ध्यान देती है। इस सबके बीच में, पति और बच्चों की भलाई के लिए व्रत, उपवास रखना भी नहीं भूलती है। परंतु घर और परिवार के बड़े-बड़े निर्णय लेने में पति को अधिक सही मानती है। बच्चों की हर बात पर ध्यान देती है, परंतु बच्चों की शिक्षा और शादी आदि निर्णायक मोड़ पति द्वारा संभाले जाते हैं। यही नहीं, वह पति की राय को ही अपनी राय से अधिक सही मानती है, उसे अपना निर्णय लेने का अधिकार तक नहीं दिया जाता है तथा उसे सब कुछ पति के कहने पर ही करना पड़ता है। इस रूप में स्त्री भी इस परंपरा और मर्यादा के मोह में जीना पसंद करती है। इसलिए कहना जरूरी है कि औरत शिक्षित और आत्मनिर्भर होते हुए भी मध्यकाल में ही जी रही है या सदियों से पीछे है। अत: स्त्री को अपनी इस मानसिक गुलामी को झटक देना होगा। इस रूप में परंपरा और मर्यादा के बंधन या मानसिक बंधन से मुक्ति स्त्री विमर्श का अन्य प्रमुख पहलू हैं।

कुल मिलाकर यह कह सकते हैं कि स्त्री अपनी मुक्ति का सपना जहाँ देखने लगती है वहाँ उसके समक्ष कई संकट भी उठकर खड़े होते हैं। स्त्री-मुक्ति एक राजनीतिक मुद्दा है। स्त्री आंदोलन ने 'पर्सनल इज पोलिटकल' का नारा लगाते हुए यह स्पष्ट किया कि स्त्री-मुक्ति का सपना व्यक्तिगत नहीं, बल्कि राजनीतिक है, क्योंकि हम जानते हैं कि पितृसत्ता के खिलाफ स्त्री की यह एक लंबी राजनीतिक लड़ाई है। स्त्री अपने समाज से परिवार से खुद व्यक्तिगत लड़ाई करती आई है। इसे एक राजनीतिक लड़ाई के रूप में लाना बहुत जरूरी है। चाहे यह विरोध परंपरागत रूढ़ियों, अंधविश्वासों, परंपरागत रीति-रिवाज, पारिवारिक संरचना, लिंग-भेद, समान अवसर का अभाव या असम्मान के खिलाफ हो, वह किसी एक स्त्री की व्यक्तिगत समस्या मात्र नहीं, बल्कि राजनीतिक समस्या है, क्योंकि प्रत्येक स्त्री इन समस्याओं से गुजरती है। लेकिन बहुत समय तक स्त्री का आंदोलन व्यक्तिगत लड़ाई के रूप में जारी रहा। धीरे-धीरे यह राजनीतिक लड़ाई की ओर चलने लगा। दिल्ली में सामूहिक बलात्कार के बाद स्त्री के प्रति बलात्कार, असुरक्षा, असम्मान के मुद्दे को लेकर राष्ट्रीय स्तर पर हुए आंदोलन ने समाज के सामने स्त्री के राजनीतिक आंदोलन की बहुत बड़ी जरूरत को स्थापित किया। क्योंकि इस संघर्ष ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था के समक्ष बहुत बड़ी चुनौती खड़ी कर दी है। इस आंदोलन के पहले स्त्री-हिंसा, समानता, स्वतंत्रता, सम्मान को लेकर न केवल राष्ट्रीय स्तर पर अधिकाधिक रूप में बहस हुई है और न ही राजनीतिक वर्ग या सत्ता स्त्री-मुक्ति को लेकर फैसले लेने में विवश हुए हैं। इससे समझ सकते हैं कि एक स्त्री को मिलकर संघर्ष करने की जरूरत कितनी है। विशेष बात यह है कि इस आंदोलन में बहुत अधिक मात्रा में पुरुष भी शामिल हुए। अत: पितृसत्ता की समाप्ति हेतु, सफलता हेतु सभी स्त्रियों, सरकारी या गैर सरकारी संगठनों, आयोगों के अलावा समाज के प्रत्येक स्त्री और पुरुष को मिलकर लड़ना होगा। इस प्रकार स्त्री-मुक्ति के स्वप्न को एक राजनीतिक रूप देना होगा तभी यह आगे चलकर पितृसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती देते हुए, एक मानवसत्ता व्यवस्था का निर्माण करेगी।

लेखक परिचय

सूर्या ई. वी.

सहायक प्रोफ़ेसर (इलाहाबाद केंद्र)

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय,वर्धा